नीलबाग का निहितार्थ

❑ रोहित धनकर

नीलबाग एक छोटा-सा विद्यालय था लेकिन उसके पीछे एक व्यापक दृष्टिकोण और सुन्दर सपना भी था। यह दृष्टिकोण किसी अकेले व्यक्ति ने बैठकर एक बार में नहीं गढ़ लिया था । इसमें विश्व भर के शिक्षा शास्त्रियों के चुनिन्दा विचार, मानव एवं संस्कृति की एक तस्वीर और विभिन्न शैक्षिक प्रयोगों के अनुभवी थे । इन विचारों और अनुभवों को एक सपने में संजोने वाले व्यक्ति की अपनी शख्सियत इस संयोजन से भी साफ झलकती है और इस सपने को साकार करने के लिए किये गये प्रयत्नों में भी । डेविड ऑसबर्ॉ के अपने जीवनानुभव, उनके अपने रुझान एवं अभिरुचियां और विभिन्न कलाओं और हस्तशिल्पों (गायन, अभिनय व चित्रकला से लेकर कुम्हारी एवं बढ़ईगिरी तक) में उनकी निष्णातता की स्पष्ट छाप नीलबाग पर देखी जा सकती थी । इसीलिए नीलबाग बाहर से देखने वालों को उनके व्यक्तित्व के विस्तार जैसा ही नजर आता था । और यहीं से उस प्रश्न का जन्म होता है जो नीलबाग के बारे में डेविड से बार-बार पूछा गया: क्या ऐसे विद्यालय अन्यत्र एवं अन्य लोगों द्वारा चलाये जाने संभव हैं ? डेविड ने शब्दों और कर्म दोनों के माध्यम से इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की । यह प्रश्न अपने आप में एक उचित प्रश्न था और है । पर साथ ही मुझे लगता है, इस प्रश्न में नीलबाग एवं डेविड के व्यक्तित्व के एक पहलू की अनदेखी भी निहित है और यह प्रश्न डेविड के प्रति थोड़ा अन्याय भी करता है ।

यह प्रश्न नीलबाग एवं नीलबाग जैसे अन्य विद्यालयों से लगातार पूछा जाता रहा । और आजकल तो जिस प्रयास की प्रतिकृति न हो सके, जिसका व्यापकीकरण न हो सके, उसे किसी काम का ही नहीं माना जाता है । अत: यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । इस पर थोड़ा विचार करना ठीक रहेगा । जब कोई यह पूछता है कि क्या ऐसे विद्यालय अन्य लोगों द्वारा चलाये जा सकते हैं । तो पूछनेवाला यह मानता है कि शिक्षा का एक स्वीकार्य मॉडल मिल गया है और अब इसकी अनुकृति आवश्यक है । यह अनुकृति करने के लिए उन क्षमताओं और गुणों वाले व्यक्ति चाहियें जो मूल मॉडल के रचने वाले में थे । अर्थात व्यक्तियों की भी अनुकृतियां चाहियें । पर ऐसे व्यक्ति बनाना तो संभव नहीं है क्योंकि उस मूल रचियता के व्यक्तित्व में तो बड़े दुर्लभ गुण हैं । समस्या यह है कि नीलबाग का तो सारा चिंतन प्रवाह ही इस अतार्किक 'तर्क-श्रृंखला' का विरोधी था । वहां तो अनुकृतियां करते जाने की बात ही नहीं थी । नीलबाग की मूल मान्यताओं, सिद्धांतों और कार्यविधि का उपयोग करते हुए विद्यालय चलाने की बात तो थी । पर वे नीलबाग की अनुकृति ही हों, ऐसा कोई दुराग्रह था ही नहीं । यह अलग बात है कि नीलबाग की अनुकृति के प्रयास - कुछ हद तक सफल प्रयास हुए हैं । पर व्यक्तिश: मैं नहीं मानता की डेविड का कोई ऐसा आग्रह था । वे तो यह मानकर चलते थे कि ऐसे शिक्षक बनाये जा सकते हैं जो सोच सकें, विद्यालय की परिकल्पना कर सकें, बच्चों को ठीक से पढ़ा सकें और साधन तथा अवसर उपलब्ध होने पर अच्छे विद्यालय चला सकें । ये विद्यालय नीलबाग जैसे ही हों यह जरूरी नहीं है । उन्होंने ऐसे शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। और मैं मानता हूँ कि वे किसी भी प्रशिक्षण संस्थान से अधिक सफल रहे । उनसे जिन लोगों ने प्रशिक्षण लिया या उनके साथ जिन लोगों ने यथेष्ठ समय बिताया, उनमें से आधे से अधिक लोगों ने या तो अपने विद्यालय चलाये या शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत रहे और हैं । साथ ही इन में से प्रत्येक व्यक्ति के काम में शिक्षा की गुणवत्ता एवं बच्चों के प्रति संवेदनशीलता पर आग्रह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । लीक से हटकर शैक्षिक समस्याओं के समाधान के प्रयास भी साफ नजर आते हैं । यहां पर यह ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि यह सारी प्रक्रिया पूरी तरह स्वत: स्फूर्त थी । डेविड अपना विद्यालय अपने धन से चलाते थे।

जब किसी ने शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए आग्रह किया तो वे तैयार हो गये । किसी प्रकार के शुल्क आदि के बिना । यदि प्रशिक्षणार्थी को आर्थिक मदद देने के लिए तथा प्रशिक्षणोपरांत विद्यालय चलाने के लिए कोई धन और साधन देने को तैयार हो गया तो यह मदद सहर्ष स्वीकार की गई । यदि इसके लिए धन देने को कोई न मिला तो डेविड ने स्वयं प्रशिक्षण-भत्ता देना आरंभ कर दिया और विद्यालय चलाने के लिए धन उपलब्ध करवाने में जुट गये । बिना किसी बड़े तामझाम और सक्रियरूप से प्रचारित परियोजनाओं के। डेविड के लिए शिक्षा के क्षेत्र में काम करते जाना जीने की सहज प्रक्रिया का ही एक हिस्सा था ।

यहां नीलबाग में शिक्षक बनने की प्रक्रिया के बारे में मैं कुछ व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर कहना चाहूंगा। मैं जिस क्षेत्र में काम करता हूँ - प्राथमिक शिक्षा एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का क्षेत्र - उसमें शिक्षण-प्रशिक्षण के संदर्भ में एक शब्दावली प्रचलित है : सहभागितापूर्ण प्रशिक्षण, आनुभविक प्रशिक्षण, सिद्धांतों/विचारों का समूह में से उभर कर आना, समूह में भागीदारी पूर्ण निर्णय-प्रक्रिया आदि-आदि। बहुत से लोग हैं जो इस शब्दावली को ठीक से समझते हैं और इसके साथ न्याय करने के लिए ईमानदारी पूर्ण प्रयत्न करते हैं । इनसे कहीं ज्यादा तादाद में वे लोग हैं जो इसे अनुकूलन एवं चालाकी से लोगों को नियंत्रित करने की तकनीक के रूप में काम में लेते हैं । डेविड इस शब्दावली का बिल्कुल उपयोग नहीं करते थे । लोगों को चालबाजी से नियंत्रित करने के वे सख्त खिलाफ थे, केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं बल्कि भाव के स्तर पर भी वे इससे विकर्षित होते थे । पर जिसे वे सही दिशा मानते थे उस तरफ इंगित करने के उनके अपने तरीके थे ।

इसके दो तीन उदाहरण लेते हैं । मैं जब प्रशिक्षण के लिए नीलबाग पहुंचा तो बहुत ही सुन्दर हस्तलिपि में लिखा हुआ मेरा दिनभर का कार्यक्रम छात्रावास के पुस्तकालय में लगा हुआ था । सुबह छ: बजे से रात के आठ बजे तक मुझे कब पढ़ना है, कब विद्यालय में कक्षावलोकन करना है और कब हस्तशिल्प की कार्यशाला (बैठक-बाजी वाली नहीं, ठोस औजारों को ठोस पदार्थ पर चलाने वाली कार्यशाला) में जाना है, सब उसमें लिखा हुआ था । यह कार्यक्रम मुझे डेविड से मिलने से पहले ही दिखा दिया गया था। इससे मुझे जो संप्रेषित हुआ, वह था: एक, काम की गंभीरता एवं मेहनत करने का आग्रह; दो, समय बर्बाद न करने का आग्रह, तीन, एक बंधे ढांचे में काम करने का निर्देश; तथा चार, मेरे वहां पहुंचने का महत्व है, यह कोई अनचाही महत्वहीन घटना नहीं है ।

मैं सीधा विश्वविद्यालय से वहां गया था। विश्वविद्यालय में एक निहायत ही अराजक अनौपचारिक मंडली का सदस्य रहा था। अत: तीसरी बात, बंधे ढ़ांचे वाली बात बंधे ढ़ांचे में काम करने का निर्देश-मुझे बहुत अखरी। शाम के पांच बजे की चाय पर डेविड से मुलाकात में बाकी तीनों चीजों का सुदृढ़ीकरण हुआ पर बंधे ढ़ांचे में काम करने वाली तीसरी बात अपने आप ही तिरोहित हो गई । क्यों? अब सोचता हूँ, इस भावना के तार्किक/तथ्यात्मक आधार क्या थे ? ठीक से नहीं पता । पर मुझे लगता है कि डेविड की व्यक्ति की गरिमा एवं स्वतंत्रता की आडम्बरहीन स्वीकृति; जो उनके हर क्रियाकलाप में परिलक्षित होती थी; और सहज आत्मीयता से ढांचे की बाध्यता का कोई मेल नहीं बैठा। अत: बिना शब्दों के उपयोग के यह 'बाध्यता' मात्र एक सुझाव बन कर रह गई । आगे इस कार्यक्रम के साथ मैंने न्याय और अन्याय दोनों किये और कार्यक्रम के अनुसार न चलने को लेकर कोई वितंडा नहीं बना । यह कार्यक्रम मेरी सहभागिता या सहमति से नहीं बना था। पर आगे इसमें फरेबदल की खूब गुंजाइश थी ।

डेविड का मानना था कि शिक्षा में संगीत बहुत महत्वपूर्ण है । प्रशिक्षण के प्रथम सप्ताह में ही स्पष्ट हो गया कि मेरी न तो संगीत में रुचि है न ही समझने की तमीज । डेविड ने एक दिन मेरे से कहा कि वे बच्चों को सुब्बालक्ष्मी द्वारा गाया गया मीरा का भजन ''म्हानै चाकर राखो जी....'' सिखाना

चाहते हैं । उनके पास इस का रिकार्ड तो था पर शब्द नहीं थे । यदि लिखित शब्द सामने हों तो बच्चों को सीखने में आसानी रहेगी । क्या मैं रिकार्ड सुनकर भजन की एक लिखित प्रति तैयार कर सकता हूँ। मैं मान गया । डेविड के पुस्तकालय में बैठा कर मुझे रिकार्ड, ग्रामोफोन और कागज पेंसिल दे दी गई । ग्रामोफोन को खूब संभाल कर काम में लेने की खूब सारी विनोदपूर्ण हिदायतें भी दे दी गई । (डेविड का विश्वास था कि जो चीज खरीदी जाये वह कभी खराब नहीं होनी चाहिये और जीवन भर चलनी चाहिये।) ''म्हानै चाकर राखोजी'' मुझे 8-10 बार सुनना पड़ा । ध्यान लगाकर। जब मैं उठा तो मेरे पास इस की एक साफ-सुथरी प्रतिलिपि थी और दिमाग में यही भजन अपने संपूर्ण माधुर्य एवं संगीत के जादू के साथ गूंज रहा था । एक ही बैठक में बिना किसी तकनीकी ज्ञान के मुझे शास्त्रीय संगीत के भावात्मक माधुर्य और बौद्धिक आलोक का भान हो गया था ।

एक बार ज्यामिति में बच्चों को कुछ आकृतियां बनाना और उनको चाहे गये अनुपातों में विभाजित करना सिखा रहे थे । उदाहरणार्थ वर्ग की परिधि को बराबर के 5,6 या 4 भागों में बांटना । ऐसी ही तीन चार चीजें थीं । कक्षा के बाद शाम की चाय के वक्त डेविड ने मेरे से कहा कि वे आकृतियों के विभाजन का तरीका तो जानते हैं पर इसके सही होने का गणितीय आधार नहीं जानते । क्या बच्चों को वह आधार समझाने में मैं मदद कर सकता हूँ । गणित मेरा विषय था पर ये आधार मुझे भी पता नहीं थे । मैंने कुछ समय मांगा । उन सारी तकनीकों के गणितीय आधार खोजने में एवं उनको शुद्ध ढंग से लिखने में मुझे एक सप्ताह लगा । सारा शोध अपने आप करना पड़ा । जब बच्चों को समझाने लगा तो वे कुछ नहीं समझे। एक लम्बा-चौड़ा अवधारणात्मक विश्लेषण करना पड़ा । बच्चों के पास उपलब्ध अवधारणाओं से लेकर उन शुद्ध गणितीय स्थापनाओं तक पहुंचने के लिए । कई सप्ताह मैं बच्चों को यही पढ़ाता रहा । अंत में गणितीय अवधारणाओं के तार्किक क्रम में विकास एवं बच्चों को आने वाली कठिनाइयों का मुझे अच्छा खासा अंदाज हो गया ।

ऐसे दर्जनों उदाहरण प्रत्येक प्रशिक्षु के पास होंगे । यह डेविड का प्रशिक्षु को किसी विषय की गहनता में जाने के लिए बाध्य करने एवं समस्या सुलझाने का अभ्यास देने का तरीका था । इसके उपयोग के लिए प्रशिक्षु के रुझान, क्षमताओं एवं प्रकृति का ठीक अंदाजा लगा पाना आवश्यक है । कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि यह तो लोगों को नियंत्रित करने का तरीका है । मेरा मानना है कि नियंत्रित करने की चालबाजी में समस्यायें गढ़ी जाती हैं । उनका दिखावा होता है । डेविड वास्तविक शैक्षिक प्रक्रियाओं में से वास्तविक समस्याएं निकाल कर सामने रखते थे । अत: यह शिक्षण कर्म में सामर्थ्य एवं रुचि के अनुसार अवसर जुटा देने का तरीका है ।

प्रशिक्षण में निर्दिष्ट एवं अनुशंसित दोनों ही प्रकार की पुस्तकें दी जाती थीं । उन पुस्तकों पर लिखना होता था और सप्ताह में दो बार गोष्ठियां होती थीं । मैं कोई डेढ़ माह तक दोनों प्रकार की पुस्तकों की अनदेखी करके सुकरात के संवाद और निकोलाई गोगोल के उपन्यास पढ़ता रहा । इसके लिए मुझे कोई निर्देश या प्रताड़ना नहीं मिली । उलटे गोष्ठियों में सुकरात के संवांदों पर, उनके शैक्षणिक महत्त्व पर भी चर्चा होने लगी । एक तरह से प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बदल गया । ऐसा हस्तशिल्प में बनाई जाने वाली चीजों एवं अन्य मामलों में भी होता रहता था। उद्देश्य किसी खास विचार में दीक्षित करना नहीं, बल्कि विचार की सामर्थ्य विवेक और उसका व्यावहारिक कार्य से संबंध समझना था । अत: अनुशंसित पुस्तक बदलने से कोई बड़ा प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं थी । पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट पुस्तकें दर्शन एवं मनोविज्ञान पर थीं। उनका पढ़ना आवश्यक था। पर उसे आगे पीछे करने में कोई समस्या नहीं थी ।

शैक्षणिक प्रक्रियाओं के प्रति यह सहज भाव विद्यालय में भी परिलक्षित होता है । इसी अंक में प्रकाशित ''नीलबाग में शिक्षा'' लेख इस दृष्टि की बहुत स्पष्ट अभिव्यक्ति करता है । यह अंग्रेजी दस्तावेज

''एजुकेशन इन नीलबाग'' के 1976 के आस-पास तैयार किये गये स्वरूप का अनुवाद है। इसी का एक और स्वरूप 1984 में कुछ संशोधनों आदि के साथ तैयार किया गया था । हमने यहां जानबूझ कर 1976 वाले दस्तावेज का उपयोग किया है। उस वक्त विद्यालय को चलते केवल चार वर्ष हुए थे । इस काम के साथ विकसित होती विभिन्न योजनाओं के अंकुरण की झलक इस दस्तावेज में मिलती है। इस दस्तावेज में शिक्षाक्रम के प्रति जो दृष्टि उभरती है वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं । एक सक्षम और कल्पनाशील शिक्षक, जिसकी शिक्षा के व्यापक उद्देश्य और सीखने की प्रक्रिया के बारे में दृष्टि साफ हो, लगभग हर गतिविधि को, एक शैक्षणिक गतिविधि बना सकता है । बच्चों को उसके लिए प्रेरित कर सकता है । इसके विपरीत आज चारों तरफ के परिदृश्य पर दृष्टि दौड़ायें तो यह भी साफ हो जाता है कि किस प्रकार हर शैक्षणिक गतिविधि को उसमें से उत्साह और शिक्षण के तत्वों को गायब करके एक टोटका बनाया जा सकता है । खण्ड-खण्ड शिक्षाक्रम को गढ़ने के इस दौर में हर गतिविधि में विविध क्षमताओं केविकास की संभावना देखना और हर गतिविधि को शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ने की काबिलियत और इस दृष्टि पर आधारित विद्यालय चलाने की सामर्थ्य की बात करना बहुत लोगों के गले शायद न उतरे । पर इस तरह के प्रयत्नों के बिना शिक्षा का काम बहुत ऊबाउ और निरर्थक हो जायेगा।

अत: नीलबाग के संबंध में सवाल अनुकृति या व्यापकीकरण का नहीं उठता । सवाल इस बात का उठता है कि क्या इस तरह के प्रयत्न कुछ लोगों को जीवन दृष्टि विकसित करने में मदद कर सकते हैं जो उसमें से शिक्षा व विद्यालय की परिकल्पना बना सकें । उसे साकार रूप दे सकें । और ये परिकल्पनायें अलग-अलग प्रकार की हो सकती हैं । कुछ का व्यापकीकरण संभव हो सकता है और कुछ का नहीं । पर प्रत्येक में मानव जीवन की गरिमा, विवेक, स्वतंत्रता, संवेदनशीलता और जो कुछ भी किया जाये उस में उत्कर्षता पर आग्रह हो ।

कुछ इसी तरह की चीजों पर ध्यान आकर्षित करेगा यह अंक । इस अंक में न तो नीलबाग और उसकी उपलब्धियों की पूरी समीक्षा करने का प्रयत्न है, न हीं डेविड ऑसबरॉ के व्यक्तित्व की । यह तो हमारे पास उपलब्ध सामग्री को कुछ और लोगों से बांटने का प्रयत्न भर है । साथ ही नीलबाग के प्रयास की भविष्य में व्यापक एवं गहरी समीक्षा के लिए आधार-भूमि बनाने का प्रयास भी है । ◆